

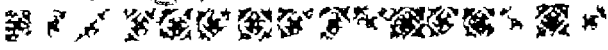


—श्री प्रभुलालजी शम्भारी





—श्री प्रभुदत्तजी शम्भारी



हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या.....

पुस्तक संख्या.....

क्रम संख्या..... १५०५२.....

श्री गुरु महाराज

श्री गुरु महाराज

॥ वाचं धेनुमुपासीत ॥

श्री गुरु महाराज

भागवत-महिमा (नाटक)

श्री गुरु महाराज

श्री गुरु महाराज

श्री गुरु महाराज

श्री गुरु महाराज

(श्रीगुरु भागवत-माहात्म्य)

लेखक

श्री प्रसन्न जी ब्रह्मचारी

प्रकाशक

संस्कृतन भवन, प्रतिष्ठानपुर

(मुंबई) प्रयाग

प्रथम संस्करण (मकर संक्रान्ति १९६८) ; द्वितीय संस्करण २१/४/७०
२००० प्रतियाँ (प्रथम संस्करण-१९६८)

मुद्रण—श्री ब्रह्मचारी महाराज, भागवत प्रेस, ३५२ सुकृतीय मार्ग,

शुक्रवर्ष शुद्धि (नारद) का विषय-सूची

सतीश्वरी पृ० १० से २३ तक । १. नारद अङ्क में परीक्षित, वरु, नारदशैवी तथा कुमुदशैवी पर महासहोत्सव-उत्सवजी द्वारा कथा सुनाया पृ० ११ से १४ तक । २. द्वितीय अङ्क, भक्ति, ज्ञान, शैवी के उद्धार लिए नारदजी का प्रथम सनकमार्गों द्वारा नारदजी की भागवत कथा सुनाया पृ० १० से १८ तक । ३. द्वितीय अङ्क परीक्षित द्वारा सतीश्वरी-शुद्धि द्वारा परीक्षित को भागवत श्रुति द्वारा आत्मन्त्र नर पर परीक्षित को कथा सुनाया पृ० १९ से २२ तक । ४. अष्टाङ्क आत्मन्त्र श्रुतिको द्वारा श्रुतिको को भागवत कथा सुनाया पृ० २३ से २८ तक ।

द्वितीय-शुद्धि

१. नारद-शैवी पृ० १० पर श्रुतिको चित्र । २. सतीक्षित द्वारा सतीश्वरीशुद्धि को सतीक्षित पृ० ११ । ३. वरु में वरु की परीक्षित पृ० १२ । ४. सतीक्षितशुद्धि और वरु परीक्षित पृ० १३ । ५. सतीक्षित वरु परीक्षित पृ० १४ । ६. वरुशुद्धि पृ० १५ । ७. सतीक्षित और वरुशुद्धि पृ० १६ । ८. श्री वरुशुद्धि का भागवत सुनाया पृ० १७ । ९. कुमुदशैवी पर कीर्तन पृ० १८ । १०. वरुशुद्धि-शैवी पर महासहोत्सव पृ० १९ । ११. लताकुंज से वरुशुद्धि का प्रकट होना पृ० २० । १२. नारदजी और भक्ति, ज्ञान शैवी पृ० २१ । १३. भक्ति नारद, पृ० २२ । १४. नारद और ज्ञान शैवी पृ० २३ । १५. नारद द्वारा भक्ति का उद्धार पृ० २४ । १६. सतीक्षित में वरु का प्राकट्य पृ० २५ । १७. शुक्र द्वारा भागवत सुनाया पृ० २६ । १८. परीक्षित, शमीक सुनि पृ० २७ । १९. शैवीश्वरी पृ० २८ । २०. आत्मन्त्र और संन्यासी पृ० २९ । २१. शैवी ज्ञान पृ० ३० । २२. शैवी और आत्मन्त्र, पृ० ३१ । २३. आत्मन्त्र और श्रुतिको ज्ञान, पृ० ३२ । २४. शैवी की कथा शैवी में शैवी शैवी पृ० ३३ । २५. श्रुतिको उद्धार पृ० ३४ । २६. शैवी शैवी शैवी शैवी पृ० ३५ । २७. शैवी शैवी शैवी शैवी पृ० ३६ ।

शान्तरूप का किया और समझने के लिये वह है—२ दिन में पूरा करने का लक्ष्य रखना है। और यह भी लिख दिया है कि यह लक्ष्य यथा हो तो लिखा जाना इसके ऊपर भी है। कभी कभी तो आज पर हमले इसे छोड़ा दिया। श्री स्वामी कुच्छरु जी को यहाँ हमारे सनी आराम में भण्डाली स्थिति का प्रमाण कर रहे हैं, उन्होंने कहा—यै इसके परिणत ही समझना पर प्रसन्न करके आशुकी दिशा के यदि जाना हो तो ?

उत्तर में लक्ष्य के लिये यहाँ ही सुविज्ञ कलाकार, विद्वान् तथा अन्य पाठक का इलाका है। जैसे तो विद्युत् धर्म मानना में इति विद्या है। इति न यनी के इतिना ही लक्ष्य। नान नदी के इतिना ही लक्ष्य। पाठकों में इसे स्वीकार किया तो ऐसे ही और तो लिख जा सकते हैं।

इतिराम

ठाकुर (सर्वेण) जगत् में
 संकालन भवन भुसा (प्रथम)
 वीर्य पूर्णिया २०३८ वि०

} प्रभुत्त ब्रह्मचारी

गान, सांस्कृतिक प्रेरणा, आदि का योगदान है।

1. प्रति-बोध-प्रणाली, सुनिश्चित रूप से प्रदान करें।

2. सुनिश्चित रूप से

12-वर्षीय आयु के लिए, प्रत्येक वर्ष की शुरुआत में, प्रत्येक वर्ष के लिए, प्रत्येक वर्ष के लिए, प्रत्येक वर्ष के लिए।

संज्ञा

संज्ञा का अर्थ है...

यह एक ऐसा शब्द है जो किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान, या अवस्था को संदर्भित करता है।

उदाहरण के लिए, 'लाल' एक संज्ञा है जो रंग को संदर्भित करता है।

संज्ञाओं का उपयोग वाक्यों में विचारों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

उदाहरण के लिए, 'लाल बिल्ली' वाक्य में संज्ञाओं का उपयोग करता है।

संज्ञाओं का उपयोग वाक्यों में विचारों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

यह एक ऐसा शब्द है...

यह एक ऐसा शब्द है...

यह एक ऐसा शब्द है...

यह एक ऐसा शब्द है...

महा—इतु सुन्दर, बहुत सुन्दर हमारे सभी भावों में उन्हें या
कर लिया है। भक्ति सम्बन्धी यह वाक्य असूहा है, किन्तु
इस महाकारियों के बीच हृदय गहराया है।

महा—क्यों क्या बात है, महाकारियों में सुन्दारा क्या बिगाड़ा है।
महा—क्यों बिगाड़े क्या बिगाड़ेंगे। महा तो के बिन्दुमात्र ही
गहरी बिगाड़ करने। किन्तु हाँक बड़े सीरस है। सनकी
भीति एको एकाई मार्ग। सरकदा का मान नहीं। नाशिकों
के ऐसे सम्प्रयोग होन है जैसे साथ बिन्दु। परन्तु.....

३- परन्तु क्या :

महा—क्यों कि भागवत का सुगमन करते हैं। जैसे भी सही,
कुछ प्रेम में वाक्य माने हैं, राते हैं, चिल्लाते हैं। कथा-
अर्थात् करते हैं। इस लोगों की नहीं, भक्ति भागवत की
सुनि कर्ते हैं, ब्रह्म की, ब्रह्मबल्लभ की महिमा माने हैं।
आनन्द है। जहाँ तो भागवत महिमा का ही अभिनय हो।
भक्ति का सुख स्थान तो ब्रह्मसङ्कल ही है। नपुरा सुखा-
वन ब्रह्मसङ्कल धर्य है, जहाँ भक्ति निरय तो सुख करता
रहते हैं। बला मधुरा ही बली।

[नद और नदी जाते हैं प्रवां पड़ना है]

[१]

अथ भागवत माहि विराज कृष्ण कृष्ण करि ।
काङ्क्षी जिह सुनि कृष्ण हैं प्रथ रूप करि ॥
कथा भागवत सकल शोक खन्वाय मिताई ॥
सुख सरसबै सतत काङ्क्षय प्रीति हृदयै ॥
मानो प्रति दिन प्रेमते, पाठ करै पावक विष्ट ।
के पुनि पावै परमपद, सुनिके भज खन्धन कर्ते ॥

[२]

कानु भागवत खन खमल नव शीश नवाउँ ।
काङ्क्षम हो कृष्ण कहीं लक्ष महिमा गाउँ ॥

१५५ इन्द्रियन ननु ननु ननु ननु ननु ननु ।
 कोरे ननुन ननुन ननुन ननुन ननुन ननुन ।
 सुखी करन ननुन ननुन ननुन ननुन ननुन ननुन ।
 ननु-ननु ननुन ननुन, ननुनननुन ननुन ननुन ।

— (२३) —

मंजुश्री-गीत

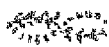
मनस्य वाङ्मयं विविक्तं शोकं शान्तं च, मन्मथस्य च शान्तं शोकं च ।

श्रीमद्भक्तानुभव प्रथमा

भगवन्तं चरितं शान्तं चरीते ।
 शान्तं चरितं शान्तं चरीते ॥

तथा ये शान्तं चरीते शान्तं चरीते, शान्तं चरीते शान्तं चरीते ।
 कथं ननु ननु ननु ननु ननु ननु ननु ननु ननु ननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।
 ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ननुननु ।

। ननु ननु ननु, ननुननु ननुननु ननु ।



प्रथम अङ्क

दृश्य प्रथम

स्थान—मथुरा का राजमन्डप

[महाराज ब्रजनाभ अपने मन्त्रों के सहित बैठे हैं। सभी द्वारपाल ने आकर प्रणाम करके निवेदन किया।]

द्वारपाल—प्रभो ! क्षत्री-क्षत्री यह शर ने आराम नभसाइ दिया है, महाराजशिवाज परोजित को आराम मिलने का यह है ? चौकहा महाराज ब्रजनाभ ने कहा—यह ऐसी बात है । तब राजा की पुरोहित सौजियों को बुलाया। आगे चलकर महाराज का आराम करना है।

(द्वारपाल शीघ्रता से जाना है पुरोहित सौजियों को बुलाना है, स्वामन का सवहा संभार एकत्रित करती है और मुबल जाकर महाराज से निवेदन करना है)

द्वारपाल—प्रभो ! स्वामन का सभी सामान समुपस्थित है पुरोहित सौजियों, महाराज की प्रतीक्षा में खड़े हैं।

ब्रजनाभ—क्यों चलें ?

[मञ्जल बायों के सहित एक गी का आगे करके सभी लोग महाराज परोजित को आगवासी करने नगर से बाहर जाने हैं। महाराज परोजित एक से उबर रहे थे। ब्रजनाभ मन्त्रक मुकाकर उनके चरणों में अर्घ्यवाहन करते हैं। महाराज परोजित उन्हें

२—आपने मुझे अनेकपट्टी का राजा तो बना दिया
मैं राज्य किस पर करूँ ? यहाँ प्रजा तो है न
वहाँ की अमरत प्रजा क्यों कहाँ ?

श्रीमहन्त ज्यों मन्त्र विनु, बानी विनु ज्यों कृप,
विनु प्रजायकी दिवस ज्यों, प्रजा बिना त्यों भूप ।
राम की बात सुनकर परीक्षित कुछ काल सोचते रहे
स्मरण करके बोले ;



राम ने राजा और मन्त्रिण ।

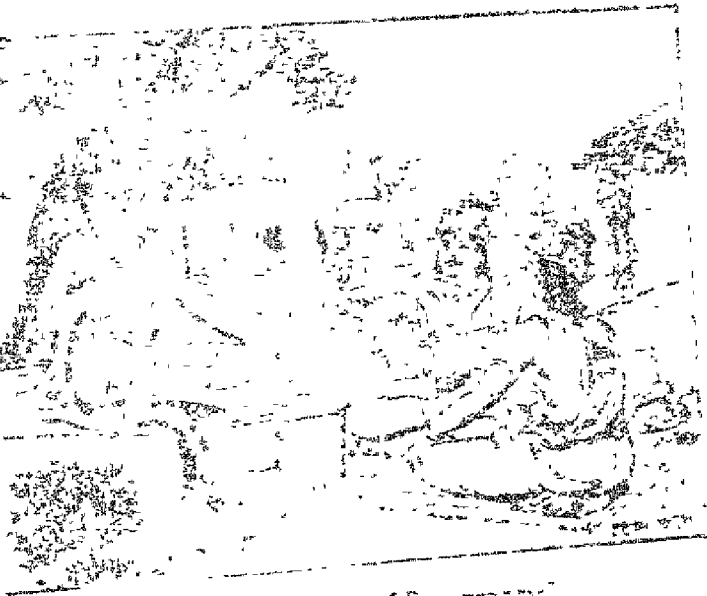
३—प्रजापति ! तुमने अच्छी बात बिकारी । इस
उपनयन कर्मणि शान्ति कर्मणि ही से करवते हैं । वे ही
गोप, वे पुरोहित मन्त्रिण हैं । वे यही कर्ता हैं
कुरिण्य बनाकर रहते हैं । उन्हें बुद्धिमान्ता था।

विश्वीय दृश्य

विश्वीय दृश्य

विश्वीय दृश्य

विश्वीय दृश्य

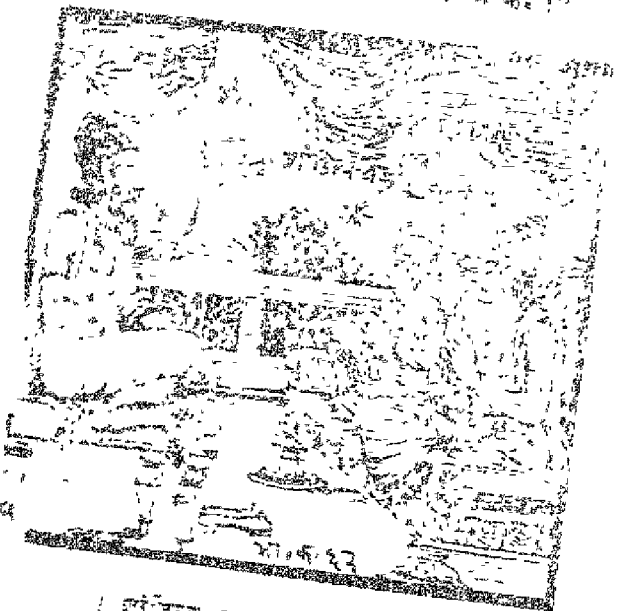


विश्वीय दृश्य

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है।

यदि हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है तो हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है।

यदि हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है तो हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है।



। यदि हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है तो हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है।

यदि हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है तो हमें अपने जीवन में कुछ-कुछ करना है।

इसमें लीजें और अपनी सज्जदारी :

मगर, जाकरानि किंतु किहू जीवित, मरने दुलह दुलह भारी ।
मरने, मरने कर बिना बिना, मरने हीसनि सुनकरावो ।
अब न मितिया रसोक्ति सुनकर, लीला मनुष्य प्यारी ।
मलमलमलके सज्जनक जल, जिदि ही दिवस अग ।
इसरीसि भारत कसिसेके, मरने मरने इन लगी ।
किरह किधो कीवति दिन किहूके, डारनेर किंतु भारी ।
किहूकि रहति रोकि किंतु मरने, लीला कुलदिनारी ।
इन उन दुलही लहिषी रो-रकर मरने लगी —

[१]

किरहिनि सिर सुनि सुनि सज्जनारी :

किर-किर फल-रल डारनेर काया, किंतु पति कसि सुन पारी ।
न मरनेमरने मरने किहू मरने, किरहा किधो जगरी ।
अब मरनेर मरने मरने लगी, कुलदि हीसनि सुनकरावो ।
हीनि न मरने मरने लगी, मरने, मरने मरने लगी ।
किरहा वावरी किरह किधोके, अरु को को मरने ।
सीवल सरस सुनकर कुलदि अति, पद हीस अरु लगी ।
इर मरनेर मरने मरने मरने, सुनकर अरु सुनि अरु ।
किरहा मरने मरने मरने मरने, किरहा-किरहा मरने ।
मरु मरनेर किंतु मरने मरने ! कुलदि मरने लगी ।
! इर मरने मरने मरने मरने मरने मरने ।

[२]

किना मरनेर यह जीवित भार ।

दिवसें इर अरु भारी, मरने मरने मरने मरने ।

नाम स कलका कुमुद वराह पर मही भाग १०३



[धामपुलाजी श्री श्रीकृष्ण मंदिर]

माझी भगवत भक्तां को शाली मीठू प्रकृतिक ही ;

बोया वेतु सुदृढ़ादि बायाँ से कोरन हो । तब उड़वजो
एकद हो जायेंगे ।

उपनय

(१)

पूछें मनुको प्रिया—मिते उड़वजो केके ।

यमुना बाली—सुनो, बडाउ मिकिई जेमे ॥

जयो धरि इक न्य बहरिजायमे रिखन ।

भक्त रूपे जना गुनम बनि उजमे निरमन ॥

उत्सवहो तिमि रूप है, उत्सव प्रिय उड़व सखत ।

कुसुम सरावर विन्द, उत्सवने उड़व मिलन ॥

[*]

आइ भगवन् भक्त कृपण गुन जाननि राखे ।

बोना वेतु सुदृढ़ मजरीर मयुर बजाये ॥

कथा करें कमनाय कलित कीरन करि कन्दन ।

नाम तिरकर रते रसन राधा तैवतन्दन ।

शेम सुबन्धन होगिने, मिखि परगत है जयने ॥

कथा कीरतन रज्जुते, उड़वजो वैधि जायेंगे ॥

[यमुनाजी के बचनों से श्रीकृष्णमूर्तिपों परम प्रसुमित हुई ।

होन महलों में जाकर परीक्षित तथा बरुनाभ से आतिन्दी की

भी बातें कही । उनकी आज्ञा से परीक्षित और बरुनाभ कुसुम

रीवर पर महासदान्तर कराने की तैयारियाँ करने लगे ।]

पटाक्षेप

चतुर्थ दृश्य

[स्थान—कुसुम सरावर]

[कुसुम सरावर पर महासदान्तर ही रहा है । दशों विशाखों

से भक्तवृन्द आ रहे हैं। कोई नाच रहे हैं, कोई गा रहे
ताल मिला रहे हैं, कोई हंस रहे हैं, कोई रो रहे हैं,
कीर्तन कर रहे हैं, कोई पद कीर्तन की धुनि में मस्त ह
कोई लीला कीर्तन कर रहे हैं। चारों ओर रस की
रती है, वातावरण में सरसता छाई हुई है। संकीर्तन की
ध्वनि से आकाश मण्डल गूँज रहा है। भक्ति भवानी भव
परित्याग करके नृत्य कर रही है। सर्वत्र उल्लास छाया हुआ
मण्डलियों के रूप में मण्डलियों आ रही हैं]



[वृन्द नृत्य पर कीर्तन]

एक मण्डली आ रही है, उसमें सभी भक्त ताल मचाने ल-

“ओकुण गोविन्द हरे सुरारं ।

हे नाथ नागनाथ वासुदेव ॥”

मासो का कमलाध सीनर समेत हुन मान मरु मरु



[कुमुभ असावर मरु मरु मरु मरु]

दूसरी भण्डली आती है वह—

हरं कृष्ण हरं कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरं हरं ।
हरं राम हरं राम राम गन हरं हरं ॥

इस महासन्त्र का कीर्तन कर रहे हैं—

तीसरी भण्डली आती है वह—

राधाकर जय कुञ्ज विहारो ।
सुरलोचन गोवधेन धारो ॥

इन नामों का कीर्तन भूम-भूम के कर रहे हैं—

चौथी भण्डली आती है वह—

राधेराज राधेराज श्याम श्याम राधे राधे ।
राधे कृष्ण राधे कृष्ण कृष्ण कृष्ण राधे राधे ॥

इन नामों का कीर्तन कर रहे हैं । गाते रहे हैं गा रहे हैं सुन रहे हैं ।

पाँचवीं भण्डली आती है—

कीर्तन करती हुई । कीर्तन करते आते भक्तजन तान स्वर
मिजाकर लुनधूर स्वर में पद कीर्तन गान कर रहे हैं ।

उन्हीं अक्षरों में हरन दिवाओ ।

कृष्णचन्द्रके तुम आनि धारि, मन्त्री मित्र कदाओ ॥१॥

शिष्य देवगुरु बुद्धिमान अति, प्रभुके मन अति भाओ ।

माला गंध, बहिन पट प्रभुके, सीत प्रयादी जाओ ॥२॥

देवभाग-सुन पण्डित कानो, श्याम लहरी जाओ ।

आया लभ प्रभु जल रही निन, लभकूँ सोत्र लिखाओ ॥३॥

बहरीबनमें जल करों प्रभु, आशुप शोभा बढ़ाओ ।

कृष्ण पादुका पूजि प्रेमगै, हरि नामनि नित गाओ ॥४॥

सुकमलता बनि बनमें बिहरो, बजरज नन लिपटाओ ।

राधा-पद परगट होवो तुम कृष्ण मग्ना अक्षर आओ ॥५॥

पुनः आगत्य मूर्ध्नि उल्लस्य, नाथि इत्यत्र सुख पाश्यां ।
आश्यां आश्यां ब्रजतन्दनं प्रियं, भगवतः कथां सुनाश्यां ॥६॥

दूरी मण्डली ठैठ ब्रजवासियों की आरती है—

वे ठैठ ब्रज मञ्जोरा सारङ्गी के सहित नाच-नाचकर गा रहे हैं—

रसिया

क्यों ! तेरी बलि बलि जाऊँ, अपना दरस दिखाने दे मोह ॥

आजा, अंधा सेरे प्यार, कजके दमन बिलु दम टार ॥

तरलि रहे नैना अब सार ॥

हे तू दरसन आइके, मति मनसे सकुचाइ ॥

तना वृच्छ नै निकलिके, मूरति नैक दिखाइ ॥

ब्रजवासी हम जला दुवारो, गहकि कुलात्रै तोइ ॥१॥ ऊधो०

तू तो भैया ! हे अमि जानो, तैने मनमें अवका ठानी ॥

आइ सुना दे मीठी बानी ॥

बदरवतये हम सुन्यो, गवाऊँ तहि पनियथ ॥

ब्रजवासी वजिके बने, कुसुम सरोधर आय ॥

हम ब्रजवासी तू ब्रजवासी, बुद्धि गयी का खोद ॥२॥ ऊधो०

अरे लजाले बात बता दे, दरसन देके रोक सिता दे ॥

अपनो प्यारो नही दिखला वै ॥

तेरी सूँ अब कहन है, बेगि न प्रकटै मित्त ॥

हमरे ब्रजमें बास करि, दुखी करै क्यों चित्त ॥

क्यों नाहें बोले अरे हठीले, कहा गयो तू सोइ ॥

ऊधो तेरी बलि बलि जाऊँ, अपना दरस दिखाने मोह ॥३॥

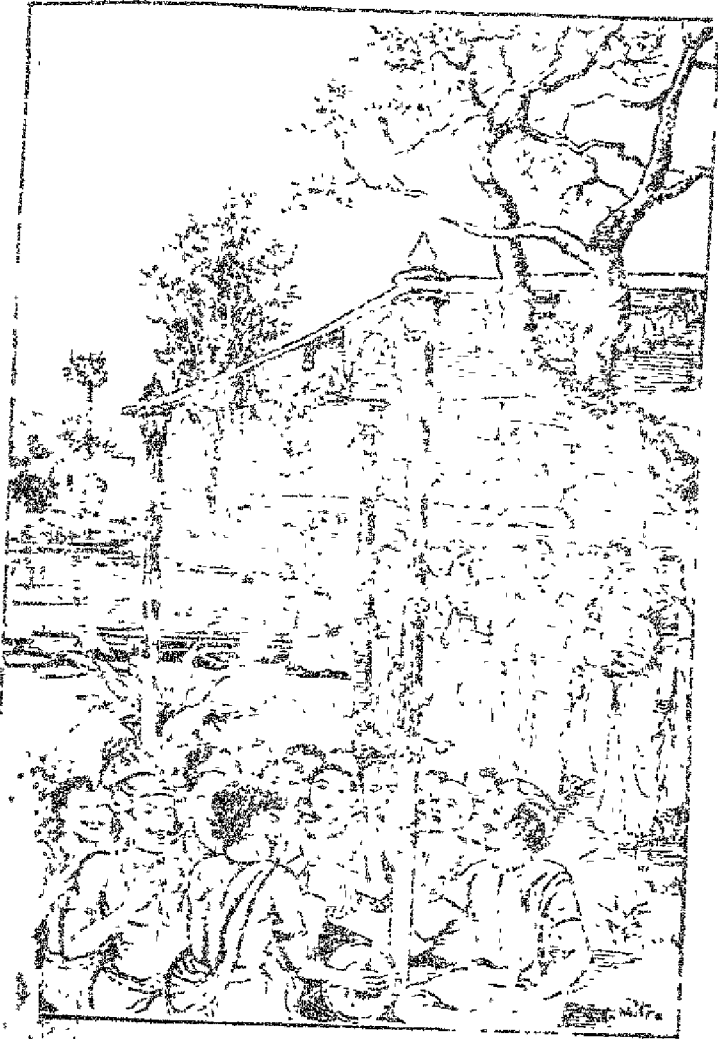
कजके महिला मण्डली आ गयी वे गाने लगीं—

ऊधो ! फिरि सन्देश सुनाओ ।

पहिले ब्रजमें तुम जन्म आये, नन्दनन्दन सन्देशो लाये ।

सीतल छतियाँ तब तुम कीन्हीं, अब फिरि बान बताओ ॥४॥

पाहिले तुम मय जडिके भाय, अबना इच्छानिर्मात समाय ।
तुम निकासिकें लाला आओ, अज काहे नरमाथः । ॥



[लताकुम से लहकरी का अकल होगा]

परशुमित्र—भगवान ! अब हमें श्रीकृष्ण भगवान के दर्शन तो वंचित रहेंगे । हमारे उद्धार का कोई उपाय बताइये ।

उत्तर—राजन ! भगवान कहीं चले थोड़े ही गये । अब उनका भवत्व है, अब को छोड़कर वे कहीं जाते नहीं । श्रीसद्-भारावत में वे सदा समाहित रहते हैं । भगवान सेवन से ही संसारी लोगों का उद्धार हो सकता है ।

परशुमित्र—भगवान ! श्रीसद्भारावत के पारायण के कौनसे प्रकार हैं ?

उत्तर—त्रिगुणभय जगत् में सभन्ना बस्तुमें त्रिगुणात्मक है । भागवान के भी सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार हैं । सात्त्विक, पात्रिक पारायण सात्त्विक है, सप्ताह राजस है, वार्षिक पारायण तामस है । गृहस्थियों के लिये सप्ताह ही लाभ प्रद है, संन्यासियों का सात्त्विक उपयुक्त है । ब्रह्मचारियों तथा वानप्रस्थियों को पात्रिक पारायण परम अनुकूल है । मैं इन महिषियों को ब्रह्मनाभ को सात्त्विक पारायण ही श्रवण कराऊँगा ।”

रोहित—प्रभो ! मुझे अभाते को आपने क्यों छोड़ दिया ? क्या मैं श्रीसद्भारावत श्रवण का अधिकारी नहीं हूँ ?

उत्तर—राजन ! आपको तो श्रीसद्भारावत परमहंस चक्र चूड़ामणि भगवान शुकदेवजी सुनायेंगे । आप तो इस समय हस्तिनापुर में जाकर समस्त प्रजा का पालन करें । पृथ्वी पर कलियुग का प्रवेश हो गया है, वह यहाँ आकर भी कथा में विघ्न कर सकता है अतः अब आप दिग्विजय करके कलियुग जहाँ मिले वहाँ उसका निग्रह करें । श्रीसद्भारावत के आप ही एकमात्र अधिकारी हैं । नारद जी को भक्ति के उद्धार हेतु सनकादि कुमार कथा सुनायेंगे और तुम्हें भगवान् शुकदेव, अब आप जाइये ।”

(३३)

[उद्धवजी की आज्ञा शिरोधार्य करके महाराज परीक्षण
इनकी पूजा प्रवृत्तिणा करके हस्तिनापुर चले गये । उद्धवजी ने
एक सहीने तक श्रीकृष्णभगवत की सरस कथा सुनायी । तभी
वहाँ स्वयं साक्षात् श्रीकृष्ण परिकर सहित प्रकट हाकम कर्माचार्य
आँडा करने लगे । भक्तों को अपने दर्शनों से कृतार्थ किया । सति-
धियों का वियोग जन्म दुःख दूर किया । गोप लोग तो सदिधियों
की छाया को उठा ले गये थे । यथार्थ सदिधियों तो ब्रज में श्रीकृष्ण
साक्षिभ्य पाकर परम कृतार्थ हुई । श्रीकृष्ण के परिकर पापको
सहित बुराई पाकर सदिधियों तथा बुरनाम कुनकृत्य हुए । सब
एक स्वर से जय ध्वनि करने लगे । बोलो भक्त और भगवान्
की जय ।]

उद्धव

(१)

बोले उद्धव—भूप ! भागवत मम गुरु कीर्तों ;
सिर धरि दण्ड प्रनाम करी परिकरना कीर्तों ॥
पारायण करि याक्ष श्यामको सखा कहायो ।
सखिव सुहृद सम्बन्धि कृष्ण कहिकें अपनायो ॥
कथा कहैं कलि कतरनी, भक्त लहति सुख कृष्णरस ।
करें परीक्षित कलिदमन, पावै जगमें विपुल यश ॥

(२)

गये धाम जब श्याम आइ कलि विघन मचावै ।
त्रिजय दशाहुँ दिशि करहु तुरत कलिवश है जावै ॥
कहैं परीक्षित—देव ! कथा सोतैं न छुड़ावै ।
उद्धव बोले—तुमहिँ आइ शुकदेव सुनावै ॥
उद्धव आयसु सिर धरो, गये भूप कलि दमन दिन ।
राज-बध प्रतिबाहु-सुत, दया कथामें भयें रत ॥

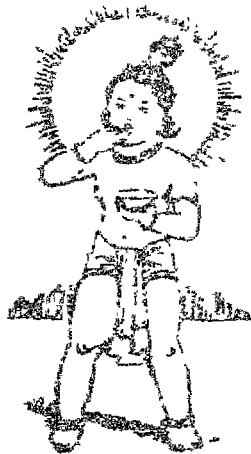
(३४)

(३)

भास दिवस तक कथा सुनी सब संसय नासे ।
रास रजनि राकेय राधिका रमन प्रकासे ॥
सदनि मरुप प्रबोध भयो जित लोला प्रविसे ।
व्याहारिक जरा द्यारि अङ्ग हरिके बनि विकसे ॥
गोवर्धन, उपवन, सघन, सुमन कुञ्ज वन-वन फिरत ।
दीखत भावुक जननि हरि, परिकर सँग विहरत सतत ॥

[पटाक्षेप]

प्रथम अङ्क नमात



द्वितीय अङ्क

प्रथम दृश्य

[स्थान—श्रीधरदासन समुद्र तट मदन कुंज की छाया ।]

[मधुसूदन से मुसहूर सङ्गीत सुनायी दे रहा है ।]

पद

धन्य यह कुलदास बन धन्य !

जहाँ रास रम रौप्यें रंजित, विहरत गणमा-रक्षण ॥१॥
सरस कुञ्ज सुजित अलि दुन्दुभि, सतिमा ललित लदास ।
नित दलगत जन-जनमें विचरत, अहं अलित अडिगस ॥२॥
शुभ कुण्ड पाखर मन्थन बर, सरस सकल मजगस ।
शोकल सन्द दुग्न्धिन नित प्रति, अर्पित वायु प्रति दास ॥३॥
बल धनिता ब्रजनाथ विभावनि, सरस रास रति धाम ।
हंसत-हंसदास रस वरमावन, केलि करत प्रनयस ॥४॥
गोप गात्र बनमार्हि चराधन, बंनु बजावन रघस ।
हल भूसल तै फिरोत मत्त धनि, कुण्ड अरु बलराम ॥५॥
गोपी गाँव खाशिया गोधन, सखई शोभा धाम ।
जित देखीं नित गाइ रहें सख, बसु-मकुन प्रभु नास ॥६॥

[नारदजी का प्रवेश]

नीशा बजाते हुए गाते हैं—

भजो रे भैया अन्न-भयहारी श्याम ।

श्याम नाम भवकलकी ओपधि, यह ही श्राद्धे काम ॥१॥

नधर तल घन अन्नरक्षकारी, यह घन नहि निष्काम ।

कुण्ड-कुण्ड कहि कुण्ड नाम रति, धारो हिय वाश्याम ॥२॥

मैं संगम में ही उनके मन्त्र, मन्त्रों की ही नाग ।
 छाँड़ि कपट छल अथवा भजिले, श्रीहरि शोभा धाम ।।३।
 (स्वतः ही) अर्थात् यही वृन्दावन है, जहाँ ब्रजवल्लभ ब्रज
 नेताओं के साथ नित्य रास रचाते हैं, रासस्थली में रस बरसाते
 ब्रजाङ्गनाओं को सरस कीड़ा करके हैंगाते हैं, बल-बल से
 गाय बराते हैं, स्वात-वालों को कमनीय कीड़ाय करके
 गते हैं । यह वृन्दावन धन्य है, धर/धाम का मुकुट है, यह ब्रज-
 व महमता की स्थली है । शृङ्गार रस की जननी है । माधुर्य



[नारदजी और भक्ति ज्ञान वैराग्य]

लेका है । ऐसा रस अन्यत्र दुर्लभ है । यहाँ चारों ही
 वृन्दा-रस हैं । इससे यह स्थली श्रोत-प्रांत है । (कान
) अर्थात्, यह तो कौन रहा है, वृन्दावन में भी पीड़ा, बल
 खड़ी, किसी की कुछ सेवा कर सकूँ तो अपने इस जीवन

सार्थक बना सकेंगे। परंपकार सेवा ही मेरा व्रत है। जोंबों
पशु के सम्मुख करना ही मेरा अनुष्ठान है।

[आगे बढ़ते हैं, नारदजी ही एक मधन लता कुड़क को दाया
क परम रूप लावण्यपत्नी युवती उदात्त वंशी नदन कर रहते
उपके सम्मुख ही ही लजेर ज्ञानकाय वृद्ध पुरुष पड़े बीजे-
र ले रहे हैं। नारदजी बड़ा विचित्र जाते हैं और इस युवती से
रहे हैं।]

नारद—देवि ! तुम कौन हो ?

युवती—देवि ! मैं भक्ति हूँ।

नारद—ये ही वृद्ध पुरुष कौन है ?

युवती—ये ज्ञान योग वेदाग्र है।

नारद—पर तुम से क्यों रही हो ?

युवती—तुम कौन हो ? इतनी मरुता से तुम क्यों रुद्ध
रहे हो ?

नारद—मैं नारद हूँ। तुम्हारी वृद्ध सेवा कर सकूँ, तो मैं
जपते का भाग्यशाली समझूँगा।

युवती—अहा ! शायद तबपि नारद हो ! ब्रह्माजी के मानस
तुम हो। परंपकार ही आनका व्रत है, तनिक ठहर
कर मेरी कठज कथा सुन लीजिये !

नारदजी—मैं ठहरा हूँ। ही आप अपनी कदानी सुनाइयें।

युवती—ब्रह्मारे ! मैं मनन व्रत में बाल करने वाला पशु प्रिया
भक्ति हूँ ! अपनी प्रचार-प्रसार करने की कामना से
उत्पन्न-लक्षण पर विभिन्न स्थानों में अवतार लेकर
मैं भगवन् भक्ति का प्रचार करता हूँ। अबके मैंने
व्रत में से जाकर त्रिविध वेशों से अवतार लिया ;

नारदजी—फिर ?

युवती—अवतार में हीपर देवों में निवास। ब्रह्मा के आवासी

ने भेग बढ़ा आदर किया। फिर मैं कभीतक ने
बढ़ी गयी। वहाँ भेग बढ़ि हुई। बढ़ी हुई। वहाँ
संभे महाभारत में आयी। वहाँ भेग उतना आदर
नहीं हुआ भेग इस ज्ञान वैराग्य पुत्रों के सहित मेरी
पूजा हुई। फिर मैं गुजरे प्रान्त में आयी। वहाँ तो
मैं वृद्धा हो गयी।

नारदजी—वृद्धी क्यों हो गयी ?

युवती—माखण्डियों के कारण। गुजरात में अधिकांश पत्नी-
दिव्यों की पूजा होता है। साधु न होकर जो साधुओं
का भेष बना लें, त्यागी न होकर जो त्यागियों का-
या लोग रच लें। ऐसे लोग उस प्रान्त में विशेष
पूजने हैं। ठग मूढ़ देखकर ही फिर अपने बंधन
मूल स्थान ब्रह्म से आ गयी। यहाँ आते ही मैं पूर्ण
युवती बन गयी। किन्तु भेग से ही पुत्र ज्ञान और
वैराग्य पन्न वृद्ध बन गये।

नारदजी—ये वृद्ध क्यों बन गये ?

युवती—ब्रह्मवादी इतना आदर ही नहीं करते।

नारदजी—फिर तुम रोनी क्यों हो ?

युवती—रोने की बात ही है। मैं युवती, बड़ा लज्जरकाय
वृद्ध। कोई क्या कहेगा।

नारद—तुम वाहनी क्या हो ?

युवती—चाहती यही हूँ कि इनकी वृद्धावस्था दूर हो जाय। ये
युवक बन जायें। कोई आपसि जानने ही तो
बताओ।

नारदजी—हाँ, मैं आपसि जानता हूँ। वह, वेदाङ्ग, ब्रह्ममूत्र,
गौना, उपनिषद् से सब ज्ञान वैराग्य के योग्य

हैं। इसकी शोषण को मैं जानों के द्वारा इनके हृदय में प्रवेश करना हूँ।”

श्री—करोआ नारद ! तुम बड़े परांपकारी हो ।”



नारदजी ने उनके कान में वेद वेदाङ्ग, गीता, उद्दिष्टपद्-चिन्ताकर सुनाये। सुनकर वे कुछ उठे फिर अचेत होकर रहे।”]

श्री—नारद ! ये उपाय तो हैं, किन्तु युग-युग में उपाय बहलते रहते हैं, अब कलियुग है। इसकी शोषण शक्तों।

नारदजी चिन्ता में पड़ गये। तब आकाश धाजी हुई सन्तों का आकाश के नृपों उपाय बताये।]

ने मेरा बड़ा आदर किया। फिर मैं कपीटक में चली गयी। वहाँ मेरी वृद्धि हुई। यड़ी हुई। वहाँ से मैं सदाशिव में आयी। वहाँ मेरा उतना आदर नहीं हुआ भरे इन ज्ञान वैराग्य पुत्रों के सहित मेरा पूजा हुई। फिर मैं गुजरात में आयी। वहाँ तो मैं वृद्धि ही नहीं।

नारदजी—वृद्धि क्यों हो गयी ?

युवती—दाक्षिणियों के कारण। गुजरात में अधिकांश साधु-द्वियों का पूजा होती है। साधु न होकर जो साधुओं का वेद बना लें, त्यागी न होकर जो त्यागियों का-मा होंगे सब मैं। ऐसे लोग उस प्रान्त में विशेष पुत्र हैं। यह सब देखकर मैं फिर अपने अधार्मिक स्थान त्रज में आ गयी। यहाँ आते ही मैं पूरे युवती बन गयी। किन्तु मेरे ये दो पुत्र ज्ञान और वैराग्य परम पुत्र बन गये।

नारदजी—ये वृद्ध क्यों बन गये ?

युवती—त्रजवा भी इनका आदर ही नहीं करते।

नारदजी—फिर तुम रोती क्यों हो ?

युवती—रोने की बात ही है। मैं युवती, बेटा जर्जरकाय वृद्ध। कोई क्या कहेगा।

नारद—तुम चाहती क्या हो ?

युवती—चाहती यही हूँ कि इनकी वृद्धावस्था दूर हो जाय, ये युवक बन जायें। कोई आपत्ति जानते हो तो बताओ।

नारदजी—हां, मैं आपत्ति जानता हूँ। बेव, बेवाङ्ग, ब्रह्मपुत्र, गीता, उपनिषद् ये सब ज्ञान वैराग्य के साधक

हैं। इनको ओषधि को भी बाजों के द्वारा इनके हृदय में प्रवेश करना है।”

ती—कराओ नारद ! तुम बड़े परीपकारी हो ।”



श.क.

श्री.श्री. श्री.श्री. नारद

२

श.क. १९५५

नारदजी ने उनके कान में बंद बंदोबा, गीता, उपनिषद्-बिस्ताकर सुनाये। सुनकर वे कुछ घटे किम अर्थों होकर रहे।”]

बनी—नारद ! ये उपाय तो है, किन्तु युग-युग में उपाय बदलते रहते हैं, अब कल्पियुग है। इसको ओषधि श्रौतों।

नारदजी चिन्ता में पड़ गये। तब आकाश बाणी हुई सन्तों। [१]

दृश्य

बोली मुनिने भक्ति—मुनि उद्धर बनाओ ।
 होई तुरत चैनन्य जुक्ति कछु अपर नगाओ ॥
 सोना अरु जेवान्य सुनयो नहिँ ते जानो ।
 कसैं कौन शुभ काज ध्यान मुनि करिबे जानो ॥
 रागान गिरा तिदि छिन भडे, करो करन चिन्ता तजो :
 माधु बतावें जुक्ति शुभ, तातैं व्यय मन्तनि भजो ॥

[आकाश वाजो सुनकर नारद सन्तों को खोज लें उनसे
 युक्ति पढ़ने योग्य लिये हुए चल पड़ने हैं ।]

[पटाक्षेप]

द्वितीय—दृश्य

[स्थान—एक नहीं, नारदजी काष्ठियों के स्थान पर युक्ति पढ़ने
 सभी सन्तों के स्थानों पर भटक रहे हैं ।]

[एक सन्त के यहाँ नारदजी पहुँचने हैं ।]

सन्तजो—आओ, ब्रह्मर्षि ! कैसे कष्ट किया ।

नारद—

जजमें बूढ़े भक्ति मुत, सूँछित ज्ञान विराग ।
 ओषाध कछु बताय दें, जानें जाइँ जाग ॥

हंसकर सन्तजो बोलें—

ब्रह्मपुत्र श्रेष्ठि तुम, सबकुँ युक्ति बताय ।
 प्रभु मन्मुख जोबनि करो, हमतैं पूछाँ आय ?
 कछु नहिँ जान हम मुने, हो तुम ज्ञान प्रवीन ।
 भटौल रहें हम नवन ही, स्वार्तो द्वार नवीन ॥

सुनते ही नारदजी चल बसे है । दूसर सन्त को
हुंकारते हैं । सन्तजी उनका सत्कार करते हैं ।]

जैसे शूरे भक्ति सुत, मूर्खित ज्ञान विगन ।
श्रीपति कछु शताय है, जाने जामें जाग ॥

यह प्रस्थानश्रयो कही, सर्वे भय भाग जाय ।
जो हस जानें सो तुमनि, काये सकल उपाय ॥

रजा सभी तीर्थों में घूसे कोई भी ज्ञान वैराग्य को लन्दा
उपाय नहीं बता सका । नारदजी निराश होकर सोचने

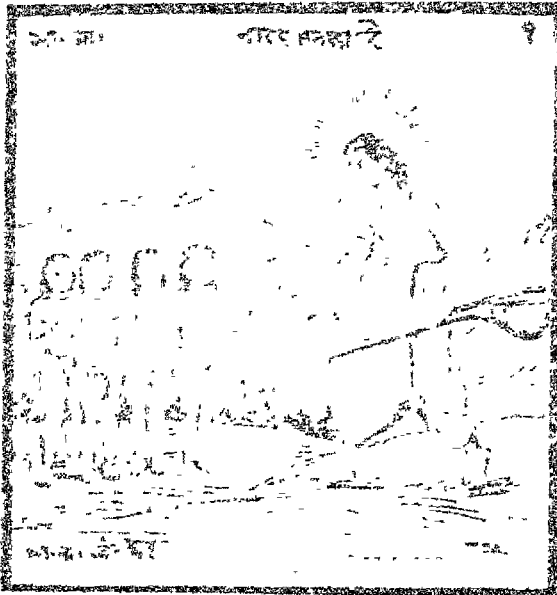
(स्मृतः ही)—अब मैं क्या करूँ ? नभवाणा ने तो
कहा—सन्त ही तुम्हें सरल साधन बतायेंगे । जिससे
ज्ञान वैराग्य सहित भक्ति का उद्धार होगा । सभी
सन्तों के समीप तो गया । किसी ने भी सरल सुगम,
सरल साधन नहीं बताया । अब चलो उत्तराखण्ड
की ओर वहाँ बटुगीवन में बैठकर तपस्या करूँगा ।
तपस्या से ऐसी कोई बात नहीं जो सिद्ध न हो सके ।
चलो उधर ही चलो ।

[नारदजी उत्तराखण्ड की ओर चले गये]

लक्षण

नभवाणी सुनि चलै देख-श्रुति सन्तानि खोजत ।
तोरख तीरथ चिरे सरित, बल, उपबल शोधत ॥
सर्वतें पूछै प्रसन्न किन्तु उत्तर नहि पाये ।
श्रमित दुखित अति भये करन तप चारी जाये ॥

तहाँ मिले मनकादि सुनि, समाचार पग परि कथ्यो ।
पग-रदकारक प्रश्न सुनि, जहु सुनि दिख खिजि गथो ॥



नारद और मनकादि

[पटाक्षेप]

—*—

दुर्गाय-दृश्य

[स्थान—वदरीवन]

[नारदजी वदरीवन में पहुँचकर सन्धिप्राप्त की ओर जा रहे हैं । उनके पीछे से (नारद, नारद) ऐसा शब्द सुनायी जाता है, पीछे किए पग कथ्यो हैं तो मनका, लक्ष्मण, सनतकुमार और अनात्मन

आर्थिक विन्यायी होते हैं। नारदजी उसको साष्टाङ्ग प्रणाम
करते हैं।]

श्री सनातन—नारद किधर जा रहे हो ?

नारद—भगवन् ! यहीं बदरीवन में तप करने आया था।

सौभाग्यवश यहाँ आपका भी व्रतान हो गया।

सनातन—तुम कुछ चिन्तित से विन्यायी बने हो ?

नारद—हाँ, भगवन् ! मुझे एक बड़ी भारी चिन्ता है।

सनातन—बताओ दो सही क्या चिन्ता है ?

नारद—श्रीवृन्दावन में मैंने भक्ति देवी को देखा वह बस रही
थी, उनके ज्ञान और वैराग्य दो पुत्र बूढ़े हो गये हैं।
उनकी वृद्धावस्था दूर कैसे हो ? आकाशवाणी ने
कहा सन्त ही सत्साधन बनायेंगे। जो अनेक सन्तों
के समीप गया। किसी ने भी उनके उद्धार का भाग
नहीं बनाया। यही मुझे चिन्ता है, उनका उद्धार
कैसे हो।

दीक्षा

श्रीवृन्दावन में मैंने भक्ति देवी को देखा वह बस रही थी, उनके ज्ञान और वैराग्य दो पुत्र बूढ़े हो गये हैं। उनकी वृद्धावस्था दूर कैसे हो ? आकाशवाणी ने कहा सन्त ही सत्साधन बनायेंगे। जो अनेक सन्तों के समीप गया। किसी ने भी उनके उद्धार का भाग नहीं बनाया। यही मुझे चिन्ता है, उनका उद्धार कैसे हो।

समानता—बेहो, एक ही मातृशुद्ध अर्थात् समता से बिना आश्रय
कीता है। उही कीता से परे अर्थात् समता से
बाह्य प्रायोजनिक विन के लिये किया हुआ कार्य
हा पराधीन है। जहाँ यह अर्थ है किन्तु "स्व"
परकार्य है।

नाम—बोला, आनन्द नाम, प्रेमपथ तथा अति, आ लक्ष्मण
केवल नाम से ही हा, कृपा कर कोई सुगम-ता
प्राप्त करता है।

समानता—यहाँ क्या तुम जानते हो ?

नाम—है ही नहीं जानता।

समानता—अच्छा ! तुमने पिताजी-नारदजी-से सुगम साधन
क्या पूछा था ? और विषयण बैठे व्यासजी को
आपने क्या उपदेश दिया था ?

नाम—मैंने पिताजी से भागवत धर्म पूछे थे, उन्होंने मुझे
संक्षेप में भागवत बताया था, वही भागवत को विषय
यज्ञान को व्यास से मैंने कहा था।

सत्कारि—दल, वही भागवत लक्ष्मण गान्तिक रोगों को
एकमात्र आरथि है।

वृत्तपथ

सत्कारि सुनि कहें—व्यर्थ नारद ! यद्यदात्मा ।
साधन अति सुख साध्य प्रबल करि लक्ष्मणिसुनाया ॥
एक भागवत कथा सुगम पथ कृपि-सुनि सेवे ।
अन्य सकल श्रम साध्य अन्तर्ग स्वर्गादि देखें ॥
सुगत भागवत अति सुख, सुनि सङ्ग नलि लायेंगे ।
पाथे प्रार्थ परम पद, सब प्रल अति हरिपार्थमे ॥

नारद—तो प्रभा ! अब अन्य किसें बुढ़ने जाइँ । आप ही
हमार अग्रज है । आप ही मुझे भगवन मुना हँ
जिससे भक्ति ज्ञान वैराग्य तीनों का कल्याण हो
जाय ।



नारदजी की वचकानि से कथा करने को तारुना
सतगुरुमा—जब तुम इतना परोपकार कर रहे हो । तो इस
भी इसमें सहायक बनें । आप किसी गङ्गा-
तट के परम पुण्य स्थल में भगवन समाह यज्ञ
को तैयार करें ।

नारद—भगवन ! आप ही किसी परम पावन पुण्यप्रद पुरव
स्थल को बतावें ।

सतकानि—तृनिद्वार के कुल नीचे भगवन्सुत (शुकनास) है ।
भगवती भागीरथी के तट पर जह परम पुण्यप्रद

नाथ है। वही मुझे भागवत समाप्त सुनावेगे
कान्हावन में वही मुकेश्वरजी भी राजा परीक्षित
का भागवत समाप्त सुनावेंगे। इस आग सब वहीं
वर्षे।

इत्थम्

इहं नारायणं मनः सुखिनं वरुणो—सत्ततः सुनावे।
होह कहीं शुभ नक्षत्र सुपरधन प्रभो! अन्तरें।
इति बोलो—हो, वरुणो, कथाकी करो वरुणो।
हरिद्वारके तिष्ठत गङ्गातट 'आनन्द' भार्ये।।
जब आये आनन्दतट, भक्त और भार्ये भई।
शुनि, सुनि, अंतर्ग भक्तिमुक्त, शरणा सकृद्विद्मं सुनि वरुणो।
। सब गिरकर गङ्गातट आनन्द तीर्थ को जाने वे।।

[पटाक्षेप]

चतुर्थ-दृश्य

[स्थान—आनन्दतट-गङ्गा किनारे]

[गङ्गातट पर एक विशाल बट घूंक के नीचे उच्च मिठासन
पर सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सत्तातत चारों भाई विराज-
मान हैं, नारायणी ने विधिविन्, उनकी पूजा की तब चारों भाई
पान-पानी से कथा कहने लगे।]

सनक—श्रीमद्भागवत सकल शांति सन्तानों का हरण करने
वाला है।

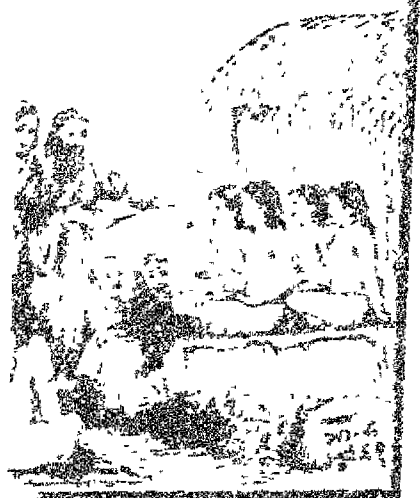
सनन्दन—भागवत कथा जो प्रेम पूर्वक श्रवण करेंगे। उन्हें
इस लोक में संसारी सुख और परलोक में दिव्य-
सुखों की प्राप्ति होगी।

सनत्कुमार—जो विधि पूर्वक श्रीमद्भागवत का श्रवण, मनन,

करेंगे । उनकी निश्चय ही अद्भुत
विन्दों में हृदय प्रीति उत्पन्न होगी ।

वा. ल. मन्त्रि-उद्धार

३



एक बारा भक्ति का उद्धार ।

जगन्मन को नित्य मुक्त हृदय उपाय ब्रह्म
की प्रेस में प्रवेश करेंगे । उसका प्रवण, मनन
ध्यान करेगा । उनके समस्त पापक कष्ट
ने क्योंकि श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण स्वयं
का सर्वज्ञ विराजमान रहते हैं—

सुख्य

हे कृष्ण भागवत भाग्य सती ।
तु सनाह सुखद साधन अरु दाही ।

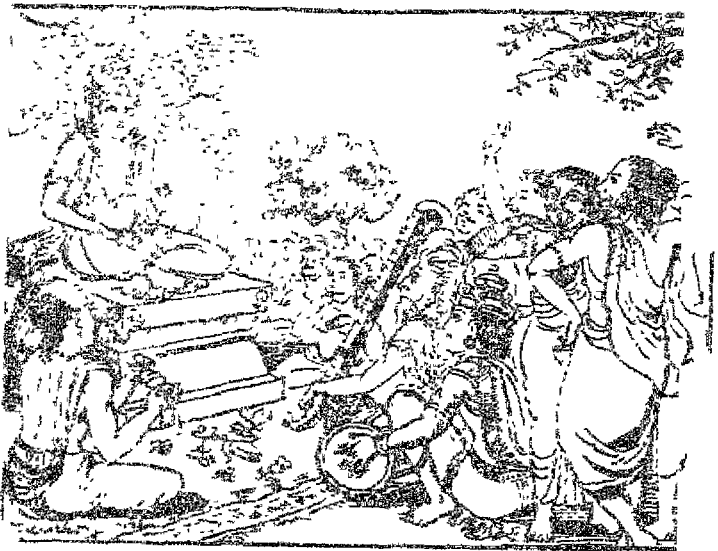
अप्य भाग्यवत-कृत्यं तदर्थं परमात् प्रभुं हरेः ।

हाथे 'अभागो' त्वांग कथा विनु शय लव शीवे ॥

शरीरं प्रसन्नं सुमहं निनः, पदि सुनिके पुनि-पुनि सुतो ।

दीप्तनद्रे अत जलन करि, एक शर नमा सुतो ॥

[तारुण्य के समाप्त के समाप्त होने पर स्वयं साक्षात् श्री भगवान् प्रकट हो गये, उनके में ही ज्ञान वैराग्य युवावस्था सम्पन्न लोक भाक्त मद्रिन कथा स्थान पर पधारं । भक्ति महावाता कृत अला प्रकट करके हुए, शरीर हाथ उठाकर नृत्य करने लगीं । ज्ञान वगान् भी नाचने लगे । इसी समय वैश्याण तथा पुराने भक्तवृन्द



[महा संकीर्तन में भगवान् का प्रकट होना]

भी दिव्य देह धारण करके आ गये और संकीर्तन में सम्मिलित हो गये । उस महासंकीर्तन सम्मेलन में श्रीशुकदेवजी भी पधारं । भगवान् मुरलीमतोहर एक उच्च सिंहासन पर विराजमान हैं

के चारों ओर सुम-सुमकरा शीशुपय गीतकव्य हरे सुदाम ।
सद्यः सान्नायण बाहुद्वेषे इज्ज नवामन्त्र का नय कर्तव्य कर रहे
इस महासंकीर्तन में भक्ति, ज्ञान और वैराग्य सृज्य कर रहे थे ।

प्रजापतिजी—साह दे रहे थे ।

नारदजी—अपनी योग्यता की ताल छेड़ रहे थे ।

देवराज इन्द्र—सुदृढ़ बजा रहे थे ।

श्रीशुकदेवजी—तापों को उड़ाकर भाव प्रदर्शन कर रहे थे ।

उल्लसजी—सज्जीवा बजा रहे थे ।

इस प्रकार भगवान् के चारों ओर लज्ज-लावकर सब ताल,
लज्ज के साथ संकीर्तन में विभोर हो रहे थे । जहाँ देर तक
गीतन होता रहा । जय सब तन्मय हो गये । कीर्तन करने-करते
उड़ोटे होकर तिर पड़े तब भगवान् ने भोग तन्मय वापसी में

भगवान्—सत्ता ! मैं वरदान देता हूँ ! जो सुबिधि भागवत
समाह सुनेंगे और तन्मय होकर कीर्तन करेंगे, वहाँ
मैं अत्रश्य ही समुपस्थित रहूँगा ।

समस्त भक्त—साधु ! साधु ! धन्य ! धन्य भगवान् वंशीधर
की जय, के वीर्य करने लगे । नारद रुदन की कृतार्थ
समझकर प्रेम के आवेश में आकर लीले-पाठने लगे ।

रूपय

सबने शुक मुख मुनी भागवत सद्विद्या भारी ।
बलि पद्म प्रह्लाद सहित प्रकट गिरिधारी ॥
हैं हरपित हरि भक्त करै कीर्तन प्रभु आने ।
भक्ति ज्ञान वैराग्य प्रेमते तावत जागे ॥
वैदेही ताल प्रह्लादजी, नारद, शीन बजाईं घर ।
धन्य सुदृढ़ बजाईं शुक, भाव जताईं रटाव कर ॥

(१०)

(१०)

इति श्रीमद्भागवतपुराणस्य प्रथमोऽध्यायः ॥
सर्वं भूतलोकं तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव ॥
तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव ॥
तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव तत्रैव ॥



[श्रीमद्भागवतपुराणस्य प्रथमोऽध्यायः समाप्तः]

एतन्मन्त्रं कृत्वा ह्यथ गये, सुति इच्छा पूजनं च ॥
गये तथा कृत्वा लोकं सत्रं कथा समाप्तं चैव च ॥

[पद्याक्षेप]

इति द्वितीय-अङ्कः

उत्तर कर्मों उज्ज्वल प्रसंगें इन-उन कर्मों ।
 मध्य मन्त्रों के मध्ये यही दिशि इच्छित कर्मों ।
 शीतल सुनि शीत कर्म—तोड सब अर्थ हम जानें ।
 अन्त में—समाप्त होहि जहाँ-तहाँ प्रभु आतें ॥



। श्री गुरु मन्त्रों के सम्मुख भाग्यवत् महिमा कह रहे हैं ।
 मन्त्रमन्त्र कहि हरि गये, मुनि इच्छा पूरन भई ।
 गये यथा कर्म लोक मन्त्र, कथा समाप्त हो गई ॥

[पटाक्षेप]

इति द्वितीय-अङ्क

तृतीय-अङ्क

प्रथम दृश्य

[स्थान—नरभवनो तट]

[पक्ष पैर का एक घृषभ तथा एक गौ दोनों मर रहे हैं। उन्हें राजा का देव बनाये अन्त्यज अन्धधुन्ध पीत रक्त हैं। गौ देव भयभीत हुए लोप रहे हैं। इतने में ही रथ पर मरने प्रलय करने महाराज परोक्षित यहाँ पहुँच जाते हैं। सेवकों को से महाराज इस अन्त्यज से पूछते हैं]

परोक्षित—अरे लोच ! तू कौन है ? इन दोनों गौ और गैर को निर्व्यथा से क्यों मार रहा है ?

[वह अन्त्यज कुछ भी उत्तर नहीं देता]

तब राजा बेतल जे पूछते हैं—तुम कौन हो ? तुम्हें यह दस्तु-धर्म क्यों मार रहा है ?

घृषभ—राजन् ! कौन किसको क्लेश देता है, सभी अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं।

राजा—प्रतीत होता है तुम धर्म हो। धर्म के बिना प्रेसी तुम्हारे बात कौन कह सकता है। तुम्हारे भीन पैर किसने तोड़ दिये ?

घृषभ—राजन् ! सब समयानुसार ही होता है।

राजा—ओ अत्र समझा तुम्हारे सत्ययुग में तप, धर्मियता, दया और सत्य से चार पैर के चमलें मरने लीये आमक्ति के कारण तीनों युग में तुम्हारे पैरों को नष्ट हो गये। अब सत्य के युग का तुम्हारे पैरों को यह अन्त्यज कलियुग है, जो तुम्हारे पैरों को नष्ट करेगा।

कहकर राजा अपने अन्वय का ज्वर करने
 मुगल राजा के पैरों में पड़ गया राजा ने रुड्डग खींच
 आगल पर चत्रिय शस्त्र नहीं चलाता । राजा कहने

तू कौन है ?

— मैं कलियुग हूँ । मेरा समय है ।

— मेरे राज्य से तू अभी निकल जा ।

— राजन ! आपका राज्य तो सर्वत्र है । मुझे भी कहीं
 रहने का स्थान दें ।

— तू नीच है, अतः १-चूल क्रीड़ा, २-सद्यपान स्थान

३-हिंसा तथा ४-वेश्यागमन इन चार स्थानों में रह ।

देख ! ये चारों तो निकृष्ट स्थान हैं । कोई पाँचवाँ

अच्छा-सा स्थान भी और दे दें ।

सोचने लगे यह सुवर्ण (धन) हत्या की जड़ है ।

इ धन के ही पीछे होते हैं, अतः इसे रहने को सुवर्ण

]

— जा पाँचवाँ स्थान तुझे सुवर्ण दिया । जहाँ धन हो

वहाँ भी तू रहना ।

के कहते ही कलियुग सूक्ष्म रूप से राजा के सुवर्ण

में गया ।

संक्षेप

१. यह संक्षेप रूप में कलियुग का उद्भव है ।

२. कलियुग के चार स्थानों का उद्भव है ।

३. इन चारों स्थानों का उद्भव है ।

४. इन चारों स्थानों का उद्भव है ।



य पुत्र—वशिष्ठापुत्र का वाजा उरोहित्वा आश्रय
 सुतक सप के अचुर की बोक ने उठ
 गये ने इन उर चक्रे मय ।

वशिष्ठापुत्र



वशिष्ठापुत्र

पृ. ४४

वशिष्ठापुत्र-वशीक मुनि

सुतकर कवि पुत्र का अत्यन्त क्रोध आ गया
 हाथ में जल लेकर उसने श्राव दिया— कि
 कण्ठ में मृतक सपे को डाला है, इसे वहीं रु
 म्भ दिन में काट ले इसी से बसकी सृत्यु ही
 गाने-गाते पिता के समीप पहुँचा। उसी समय
 पुनर्जन्म का समय आ गया। सम्मुख गाने हुए

शर्माक—कम ! तुम तो क्यों कहें हैं ?

शुक्ली—पिताजी ! आजकल कष्ट में बड़ा काम पड़ा है ।

[मूनक मरने की खबर पर मुनि ने बड़ा दूर फेरफार हुए पड़ा]

शर्माक—कम ! वह मूनक मरने पर कष्ट में किसने डाल दिया ?

शुक्ली—पिताजी ! हमिनापुर का राजा यमोजन आज का बड़ा दुःख मरने में आजकल कष्ट में डाल कर डाल गया ।

(मूनक के मरने की खबर) शर्माक—सदा राजा के राज दरमिनापुर में आजकल घर मरने में है ।

शुक्ली—हाँ महाराज ! वह आजका था ।

शर्माक—तुमने इन महाराज के स्वर्ग-दरमिनापुर का क्रिया ही देगा ?

शुक्ली—पिताजी ! मैंने उस अधर का ऐसा मदानत किया कि वह जन्म भर नहीं भूलगा ।

शर्माक— (संभ्रम के साथ) तुमने ऐसा स्वगत क्या किया ?

शुक्ली— मैंने उसे कौशिकी नदी का जल हाथ में लेकर वही श्राप दिया कि आज के सातवें दिन यही सपने तुमने मूनक बनकर काटेगा, जिससे मेरी सुखु हो जायगी ।

(कोपित होकर) शर्माक—अरे, बच्चे ! मैंने यह बड़ा लड़कपन किया । यला एक यमोजन राजा का छोटी-सी बात पर इतना जोर श्राप निरो बुद्धि श्रेष्ठ हो गया है ।

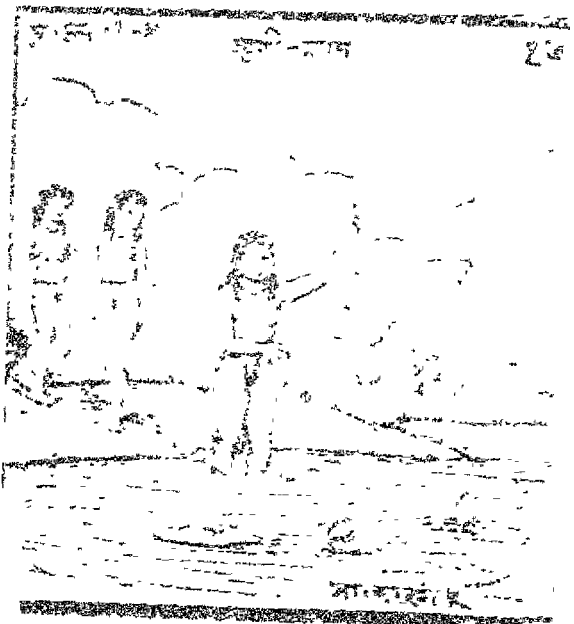
शुक्ली—पिताजी ! समाधिस्थ मुनि के कण्ठ में मूनक सप डालना यही धर्मोपाय है ?

शर्माक—अभी न बचता है । बुद्धि का कच्चा है ! अरे, राजा

(२६)

सूत्र पालन से अशक्य था। इससे परीक्षा
देना किया होगा, इस पर तुमने खेला दौर इ
रखा था।

विद्वान् : सूत्रक सभे हालता क्या साक्षा
सक है।



सूत्रक सभे

विद्वान् : सूत्रक, वकालत सभ कर। अर, सुभ त
है, साक्षा का सभा ही भूपण है। सभा व
ही सुभ सभार सुभ सभे है। कोई हम
से सभ सभता है, कोई सूत्रक सभ हम
से ही सभ है।

वर्षों उनके हाथ से लुप्त करने को डाल दिया । इस
बाप से लुप्त होने से वे भी दुर्बला होगा । तथा
हम अपने को एक जय-जयकार किया ।)

दुर्बला—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—हरी दुर्बला तथा संभव है ।

दुर्बला—यह बात । संभव है कि इन की जय-जयकार ही
आप ही । के संभव है कि इन की जय-जयकार ही
आप ही ।

(संभव है कि इन—उन्हें दुर्बला और के संभव है
जय-जयकार ।)

दुर्बला—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।
संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।
संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।
संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।
संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।

संभव है कि इन—संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।
संभव है कि इन की जय-जयकार ही ।



श्रीशुक—राजन् ! अमृतमालावत धरना कैले कादिये इसी की
शिका है। वे । ननुय कृष्ण जायो आ अहर्निशि आप
कर कोन कालु को मया नमोज भवे, जो उसका उद्धार
हो जाय ।

श्रीक—कृष्ण नाम जिहि दिन जयो, सुखु न कबहु विचार ।
तबि वे ईश्वर बुके नयो, निरनय दिन उद्धार ॥

परांजित्—आगत्य कथा है ।

श्रीशुक—भगवन् ! अमृतमाला कथा ही आगत्य है, भगवन् ! वरिष्ठ
कृतके से अति उपका हामी है । भक्ति ही समस्त शोक
मोक्ष काय समस्तों को मोक्षे वाला है । सान दिन से
आगत्य सुनाकर ये तुम्हारा उद्धार कर देंगा । राजन् !
तुम शोक मोक्ष तथा चिन्ता का सर्वथा परिष्कार करो ।

सुषय

श्रीशुक ! परम पुरुषार्थ कृपा करे सोहि बतावै ।
समस्तोत्तम कन समहिँ तुरत ताकुँ सुनावै ॥)
मुनि मुपास्यम ईश्वर नीर नयननिमहँ आर्य ।
बोले सुक—हृद धन्य ! जगततँ चित्त त्वापौ ॥
सुषय ! सब चिन्ता तजहु, मन-मोहनमें मन धरहु ।
कहँ आगत्य तत्र अद्य, वृत्त दिन छैके सुतहु ॥

[श्रीशुकदेवजी राजा परीजित् का कथा सुनाने हैं । सुनकर
राजा का शोक मोक्ष सब नष्ट हो जाता । तत्र शुकदेवजी पूछते
हैं ।]

श्रीशुक—

सुषय

आत्म चिन्तना करो अहं सब चित कहलाऊँ ।
परम धाम ही ब्रह्म परमपद ब्रह्म कहाऊँ ॥



चतुर्थ-अङ्क

प्रथम-दृश्य

[मन्थन-शुभकर नट का एक भाग]

[आत्मदेव का हाथ अपने कंधा की ओर लगाकर जाती
पत्नी चुन्धुनी के साथ देहा धारण कर रहा है ।]

आत्मदेव—मेरे पास जिना भी है, धन भी है, वैभव भी है, फिर
मैं भी सुखी नहीं ।

चुन्धुनी—शरीर किस काम का दुःख है ?

आत्मदेव—जिस मृत्यु के घर में किलकारिणी मारने हुए खिलने-
हलने पुन-पुनो न हो, वह घर तो मरक के सङ्घ है ;

चुन्धुनी—जड़का-जड़की से जिलने सुख पाया है । उसके पीछे
मरः दुःख ही उठाना पड़ता है, रात्रि-दिन उन्हीं की
चिन्ता घना रहती है ।

आत्मदेव—तुम श्रेयो धारण करती हो ? मृत्यु का सुख तो मन्तानों
से ही है ।

चुन्धुनी (मुँह लहकाकर) हाँगा सुख । मैं तो सन्तान वालों को
मना दुखी चिन्तित ही देखती हूँ । फिर जब भाग्य में
सन्तान है तो नहीं, तो उसके लिए दुःख करने की क्या
धातु है ?

आत्मदेव—तु तो समझती नहीं । पुत्रधर्म तो करना ही चाहिये ।
मन्त मन्ताना देख कर भी मंथन मार सकते हैं । मन्त-
पुत्रों के आशीर्वाद से असम्भव भी सम्भव बन
जाता है ।

मेरी मध्य मध्य स्थिति पर आते हैं। संन्यासी अपने
 कामों पर ध्यान देते हैं। काम छोड़े हुए आत्मज्ञान प्राप्त करने में
 कष्ट लेते हैं, जहाँ]

संन्यासी—१. जो काम करने दुःख का कारण बनता है।

२. जो दुःख का कारण बनता है—

मेरे पास कोई काम है या नहीं, संन्यास में ही दुःख पाई।
 (जिस काम को दुःख करना शुरू करे, तो वह श्रमहीन ही नर जाई ॥
 मेरे दुःखों को दूर करने के लिए मैं दुःख छोड़ता हूँ।
 जिसके लिए मैंने अपना दुःख छोड़ा है।
 ३. जो दुःख का कारण बनता है, जिसका मैंने हल किया है।
 ४. जो दुःख का कारण बनता है, जिसका मैंने हल किया है।
 ५. जो दुःख का कारण बनता है, जिसका मैंने हल किया है।
 ६. जो दुःख का कारण बनता है, जिसका मैंने हल किया है।

संन्यासी होने से है ।]

(संन्यासीत्व)

संन्यासी—

जो दुःख का कारण बनता है, उसका हल करना ही दुःख छोड़ने का
 दुःख का हल करने का ही दुःख का हल करना ही दुःख का हल करना ही
 दुःख का हल करने का ही दुःख का हल करना ही दुःख का हल करना ही
 दुःख का हल करने का ही दुःख का हल करना ही दुःख का हल करना ही
 दुःख का हल करने का ही दुःख का हल करना ही दुःख का हल करना ही
 दुःख का हल करने का ही दुःख का हल करना ही दुःख का हल करना ही
 दुःख का हल करने का ही दुःख का हल करना ही दुःख का हल करना ही
 दुःख का हल करने का ही दुःख का हल करना ही दुःख का हल करना ही

अपने दुःखों को बहुत न बढ़ाएँ, मैं नहीं सीधे अपनाऊँगा।
 संन्यास मुझे नहीं देंगे, तो तब हारे मर जाऊँगा ॥
 तुमको हिंस्र इत्यादि लोग दायें, सब लोग तुम्हें धिक्कारेंगे।
 हरयारे कर्मों लंबी जन, फिर तुमको सदा पुकारेंगे ॥
 संन्यास शुरू करने कहा धरा, घर-घरने दुकड़े खाते हैं।
 संन्यास शुरू वह शुरू भजा, जिसके पुरखे तर जाते हैं ॥



संन्यासियों को इसका नाम 'संन्यास' ही रखा है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति संन्यास लेता है, वह अपने सभी सम्पत्तियों और सम्बन्धों को त्याग देता है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति संन्यास लेता है, वह अपने सभी सम्पत्तियों और सम्बन्धों को त्याग देता है।



[संन्यासियों की संख्या]

श्री—संन्यासियों की संख्या बहुत कम है। वे लोग अत्यंत सदाचार और सदाशिव के लोग हैं।

आमदनी कल लेना है। संन्यासियों को साधारण प्रजापति के समान ही माना जाता है।

[संन्यास]

[इरॉस-कहस]

[पयल-आपने का कह]

[सुन्दरता बंद, का अलका देती है । उसके मन एक पड़ी
मिथ्यता है । वह अलका को जला दे करती है ।]

पड़ोसिनी—तुम सुन्दरता को खाल दवाने पर तबिल भी खाने का
उद्यम नहीं है । तबिल में कुछ खाना है ।

सुन्दरता—तुमने तबिल में खाना भी दिया ही नहीं । मैं तबिल
उद्यम नहीं है सुन्दरता ।

[इरॉस का सारा पड़ोसिनी—अलका है ही । सुन्दरता पिछला
नो है सुन्दरता बंद । आज अलका के दिन, मैंने खल
दुखी रह जाऊँगी । कल भी अलका खाने का कुछ नहीं
मिथ्यता है ।]

[अलका का सुन्दरता—तुमने रह जायेंगे तो रह जायें हमारी
अलका । तुमने अलका का तबिल कोई देना ही मना है
कल ? तबिल में तब अलका है ही, अलका है ही । हमने
कल मनायेंगे खाना देना है कल ? तुम्हारा खल
कल-कल बोल रहा है । तबिल काम कराती नहीं । यहाँ
खाने का खाना है । खाना का । हमारे अलका अलका
नहीं है ।]

[पड़ोसिनी सुन्दरता खाना हुई खली रहती है । वह उसे
बोता है तुम सुन्दरता को तबिल में खर खर रहती है ।]

सुन्दरता—हमने एक बार कह दिया । मैं अलका नहीं हूँगी, नहीं
दूँगी । तुम जानी क्यों नहीं है ? सुन्दरता कल का
अलका खल खल हूँगी ।

[पड़ोसिनी ने भी अलका का मना वह गरजकर बोली]

आत्मद्वेष—आत्मद्वेष का अर्थ कुछ बड़ा नहीं चलता। सभी प्राणिमा-
त्रों में हुआ जाता है। वह तो जीविताना जाकर रहने हैं,
तो ही वे प्राणियों में नहीं जाता। फिर प्राणी पृथ्वी पर
तो पैदा होते हैं। इसी अर्थ से ही अन्न देने से सुरक्षित
करा जा सकता है।

। साहजिक । पुष्पक—तुम तो अन्नोपकार करो। मैं तो ऐसी
कृपित्वों को अन्न अन्न का कण भी न दूँगी।

आत्मद्वेष—आत्मद्वेष, अन्न देना। अन्नोपकार तो तुम।

पुष्पक—अन्न देना है। मैं अन्न तो न छुड़ भी नहीं तुमको।

आत्मद्वेष—तुम्हारे अन्न देना—अन्न को—ही जान है।

पुष्पक—अन्न देना, अन्न देना जान है।

[एक दिव्य लक्ष्मी देखा। वह सब है। एक बड़े भारी सिद्ध
महात्मा ने दिया है। इसे तुम परिव्रता के साथ खा लोगी, तो
सिद्धि ही तुम्हारे अन्नान ही जायगी।

(अन्नोपकार अन्न से प्राप्त होती हुई) तुम्हें तो उन मातृओं
को ही प्राणों का विश्वास है। अन्नोपकार, लाया। तुम कहते हो तो
आत्मद्वेष।

[एक लक्ष्मी भीतर चली जाती है। आत्मद्वेष भी अपने
भाग्य से जाकर निकल करके करने लगते हैं।]

[पदार्थ]

नृत्तिय—दृश्य

प्रहसन

[स्थान—एक विशाल का घर]

[एक किसान का नाम सिद्धि, स्त्री का नाम अन्नोपकार।]

सिद्धि—सुनना है, अन्न कहाँ का साग बताया है ? (सुन
विचका का) हा, तुमने बड़े साग लाकर गव्य दिये हैं,

एक एक पादके पुष्प, पुष्प कावे पुष्प,
निर्मल नारी अल सके, हृदय-पुष्प ही नारी ।

एक एक पादके पुष्प, पुष्प कावे पुष्प,
निर्मल नारी अल सके, हृदय-पुष्प ही नारी ।

विशेष—

सकलका अल सके, नारी अल सके,
सकल नारी अल सके, पुष्प कावे पुष्प,
निर्मल नारी अल सके, हृदय-पुष्प ही नारी,
सकलका अल सके, नारी अल सके ।

अल सके, नारी अल सके, पुष्प कावे पुष्प,
निर्मल नारी अल सके, हृदय-पुष्प ही नारी ।

[विशेष नारी अल सके, हृदय-पुष्प ही नारी]

[पदार्थ]

सकल-सकल

[अल-सकल का अल]

[पुष्पका को अल सके अल सके]

अल सके-अल सके अल सके अल सके]

अल सके-अल सके अल सके अल सके]

क. कल्याण अथवा न ही जायगी। भला अथवा बुरा में
या किसी के सम्बन्ध में लिखती है ?

उ. मा. कल्याण—कल्याण में ही जायगी। अथवा
अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी।

उ. मा. कल्याण—कल्याण में ही जायगी। अथवा
अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी।

उ. मा. कल्याण—कल्याण में ही जायगी। अथवा
अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी।

उ. मा. कल्याण—कल्याण में ही जायगी। अथवा
अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी।

उ. मा. कल्याण—कल्याण में ही जायगी। अथवा
अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी।

उ. मा. कल्याण—कल्याण में ही जायगी। अथवा
अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी।

उ. मा. कल्याण—कल्याण में ही जायगी। अथवा
अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी। अथवा न ही जायगी।

इस आशय का अर्थ बहुत-सा हीन धर्म का
 इन सबके किन्तु अर्थगत को संशय का
 बंधन है - ये धर्मधर्मों को लगे रह
 । धर्मधर्मों को लगे रहना ही, धर्मधर्म
 के लगे रहना ही धर्मधर्म धर्मधर्म के लगे रहना

धर्मधर्म



भा. का. ६९

गोकर्ण-जन्म

इस उलका नाम गोकर्ण रखे जाते हैं। इनको आ
 कर्ण कहते हैं।]

[पटालपुर]

पञ्चम-दृश्य

[दृश्य—आमिदेव का घर]

[दृश्य—आमिदेव का घर]

वत । (१) । (२) । (३) । (४) । (५) । (६) । (७) । (८) । (९) । (१०) । (११) । (१२) । (१३) । (१४) । (१५) । (१६) । (१७) । (१८) । (१९) । (२०) । (२१) । (२२) । (२३) । (२४) । (२५) । (२६) । (२७) । (२८) । (२९) । (३०) । (३१) । (३२) । (३३) । (३४) । (३५) । (३६) । (३७) । (३८) । (३९) । (४०) । (४१) । (४२) । (४३) । (४४) । (४५) । (४६) । (४७) । (४८) । (४९) । (५०) । (५१) । (५२) । (५३) । (५४) । (५५) । (५६) । (५७) । (५८) । (५९) । (६०) । (६१) । (६२) । (६३) । (६४) । (६५) । (६६) । (६७) । (६८) । (६९) । (७०) । (७१) । (७२) । (७३) । (७४) । (७५) । (७६) । (७७) । (७८) । (७९) । (८०) । (८१) । (८२) । (८३) । (८४) । (८५) । (८६) । (८७) । (८८) । (८९) । (९०) । (९१) । (९२) । (९३) । (९४) । (९५) । (९६) । (९७) । (९८) । (९९) । (१००) ।



[गोपनीय और आत्मकथ]

बुद्धि बत नहीं । (पिता को भी मारना है । पिता
 फिर धुन-धुतकर रोते हैं । धुनवकाली काँध हैं
 भगकर बगनी को हटाकर जला जाता है । (सभी
 गोकर्ण आते हैं । पिता को रोते देखकर पूछते हैं ।)

गोक्षर—विजारी ! क्या भय न. आप क्यों रो रहे हैं ? (गंते-
रों) आत्मदेव—बेसा ! क्या बतावें कुसुम से तो
निर्दयतात होमा ही खला है ।

बेसा—बेइ-शाह रुक सम्भवतः, कहीं यही सरवतः ।
साको दोधन नरक नम, जाको पुत्र कुसुम ॥
पुनः दुखी जाके मर्तो, कौन बतावे कथः ।
सुन गोक्षर ! कर्ण कदा, तुम अविजानी सन्द ॥

गोक्षर—बेइउशिबांध हृदिउभिमनि त्यज त्वम् ।
सायासुतांशु सदा ममतां विशुद्ध ।
पुत्रानिगं जगदिदं कणभङ्गनिष्ठम् ।
देवाद्यात्परसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥

(६)

धर्म भजत्य सत्ततं त्यज लोकधर्मान् ।
संशस्य साधुपुत्रवाङ्महि कामतृष्णाय् ।
अन्यस्य दोषगुणविन्ननसाशु मुक्ता ।
सोऽकथारसमहो नितरां पिव त्वम् ॥

दृश्य

(१)

अस्थि मांसते बनी देहमें व्याप्तो समता ।
मुत शरीर तजि मोह करो सर्वधर्म समता ॥
छिन भंगुर जग जानि विजारी समकूँ जानों ।
नाशवान सब वस्तु जधारथ हनि मत जानों ॥
अनिही रस वैगस्थमें, रसिक सदा बाके बनो ।
एक मत्व सर्वेश हैं, भक्ति इनहिंकी में बनो ॥

एक धर्म है जिसे अति अराजकमें लगे ।

नाक धरमके त्यागि अराजकमें चित्त भंगे ।

लगा साधुनि कर्म करो कर्मभङ्ग भवन चित्त

बधिके लुप्या कर लगाओ श्रीचरिते चित्त ।

अन्य दोष गुण चित्त नहीं-नाशो प्रभुसमै प्रतिष्ठि ।

आजन्त मेका कथामे चित्त लगाओ अराजकिये ।

म—सो थिनालो ! आर अर गुन लुप्यावर प्रस मे लगे

जाइये वहाँ अराजकभाषण का निराकरण भवन समन

अवन करके कालहोय कोरिये ।

पद—वचन : अरमे सुनै बहुत सुन्दर अरसेउ विद्वान् ।

मे इस अराजकमें लगे गुरु का त्यागकर श्रीकृत

वराणसस्थिता मे वो चित्त को लुप्यायेण ।

[आत्मदेव लक्ष्मि आराधन मन में जाते हैं ।]

(गोकर्ण भी लक्ष्मि-श्रीका के लिये लस वेने है)

[पटाक्षेप]

उदा—दृश्य

[व्यन—पुरुषकानी का घर]

(जेवश्य लो संगीत सुनार्यो वे रता है ।)

सलुन लन नूरुध वधरध लोवायी ।

कोव, मव, लोव, मोहमें फोरयो चित्त भरमार्यो ।

हेन इन-उन तित अटकत, करि अरव पाव कस्यो ।

चौरी, जरा, बलिका परधन चित्त लुप्यार्यो ।

योग लो नर लन पाके, बदले कौंध बिसार्यो ।

व लन ये मान अमोलक, करि कोला नमवार्यो ।

अपना नाम सुना कर सब, सोचा धन न लजाया ।
 सु-दल पाहू अथवा सुख, नरसी कोर पद्धिनाश ॥१॥
 र्क । अरुण ही) गिना चलै गये । जाना लर गई, आई
 नौरुध डेन गये । अथ निरनाह होइयो; कैल, नमस्तुत दुख
 का नैव । कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? घर में अन्न नहीं
 दान मन नहीं । कान सुन्न है नहीं । कैसे निर्वास
 होगा । सुग घिसा आस नहीं चलता । कोई शरणा
 कास नहीं मिलता । कोई नौकर भी नहीं रखता । दार-
 कर कोरा ही कानों पड़ेगी । नौरी ही कर्तव्य । जूथा
 में भी धन सिद्ध जाता है, जूथा भी मिलेगा । एकाकी
 जीवन भाग है । आशुषा कोई सुगै अपनी लड़की कर्म
 देगा । अशुषा में रखेगा । एक नो नहीं पूरी पाँच । चौर
 के धन से उन्हें संतुष्ट करेगा । (इस प्रकार सोचकर
 चौरों करने लगा । धन के लालच से पाँच बेश्याओं भी
 आ गयी । बेया धन के लिये निन्ध भगइने लगी ।)

बेश्या—सुकहाँ लिया फँसाय, धन पट गहना हीलिये ।

भागूँ आशि लगाय, बने निरुद्ध ही रहा ॥

बेश्या—दुख समयकों तुल धनी हो, आई तुमरी आंग ।

तुम नो तुच्छे-लफंगे, काभी कांधी चोर ॥

बेश्या—धन पैसा कैसा सुग्ग, पैसा सं सुग्ग होय ।

पैसा यहि नहि देडगे, डोड जावेगी ताय ॥

बेश्या—विकर्नी चुपरी बात करि, फँसा लिया है मोड ।

मेरे मन की नहि करो, मारि भगाऊँ तोह ॥

बेश्या—बहि-बहि आति ही प्रसंशा, करो बनाई बान ।

मेरे मन की नहि करो, भाहंगी वो लाव ॥

[अर्थात् को धान सुन्दर पुष्पकारी विधान हुआ । आ. व. व. सुखा में सब धान गैर जाया था, अर्थात् बनाम नाना प्रकार के भागों कर रही थीं, सबके सबके भाग अलग अलग करने हुए था—]

सुन्दरकारी—तुम सब तो मेरी प्राणियाँ हो, जीवन्तान हो, मेरे सुखा में लिये जीना है, कल से सुखा का प्रसन्न कर देना । सुन्दर लिये सुन्दर-गुणदा सब बहुसूत्र आभूषण और नाना प्रकार की जिंदाइयाँ लाऊँगा । सब तो तुम प्रसन्न हो जाओगीं ।

अर्थात्—लाकर देने दूँ ही तो । अच्छी धान हूँ सब तक और प्रसन्ना करती हूँ ।

[सुन्दरकारी राजसभल से बोली करने जाना है बहुसूत्र सब आभूषण लाकर लाता है । अर्थात् को परस प्रसन्नित होकर अपने हाथों से पहिनाता है । उहाँ प्यार करता है, प्रसन्न होता है अर्थात् प्रसन्न से लाकर सम्भवा करती है ।]

अर्थात् बोली—सब तो बहुतसूत्र हैं, आभूषण तो रानी-महा-राजियों के पहिने के हैं । क्यों से हमसे बहुतसूत्र वस्तुओं ले आया ?

सुन्दर अर्थात्—कहाँ से आया ? कौन अर्थात् कौन है कौन ? बोली करके लाया है ।

बोली—हमसे क्यों बोली कैसे कौन, कहीं कौन । सबका से नहीं गया ?

बोली—सब तो निरस्य है सब साधारण पर कौ बोली का लाकर कहीं । सबसबसे से बोली करके लाया है ।"

अर्थात् अर्थात्—राजा को बोली दिए नहीं सकता । सभी राज-

कमनाय जायें। उसे पतः से जाना । उसे
दुर्ग पर लटकने देंगे । हम सबको मारना ही
हमारा इरादा है।

गणिका—तब हमें अपने बचने का क्या उपाय करें ?

दुर्ग—आज नहीं तो कल, कलड़ा तो जब अवश्य लारंग। । हम
सब को हमारे कारण बकाई जायेंगे। हमारे अन्तर्गत तो
रक्त है हम सब इसे मारकर पुच्छ-पुच्छ नमानी है
बनने जायें।

गणिका—हो नहीं स्यात्काम उदाह है । हमें भयपट सुना दिया
है, यह सब अज्ञान ही मान जब सब मिलकर हमें
मारकर वहीं गड़हा खोदकर गाड़ देंगी । हम पहिले
गड़हा खोद लें ।

दुर्ग ने लोहे के गिराकर गड़हा खोदा । जो जे उमें व्यर्थविक
मरना ही कर दिया । जब मारना करके अज्ञान हीकर पड़ गया ।
उसे उमें पाट वा रखने से बच दिया । और उसका गला घंटने
नगी । उसकी जोश निकल आयी, किन्तु पाण नहीं निकले, जब
जबल हुए लकड़ी के बजले उसके मुख से भर दिये । बड़ी दुर्इशा
से वह मरा, तब उसे सबने गड़हे में गाड़कर उसे पाट दिया ।
गलाकाल वे निज निज स्थानों को भाग गयीं । धुन्धुकायी मरकर
सबका प्रेन बन गयी ।]

उगलाता

अहं पर गनिका पाँच गति, वेति चारि धन पट तिनदि ।
नमि कामरण अधिक निदि, यद्य करिहो लोच्यो मनहि ॥

छापय

तनु कासि मुखमहं अगिनि मरी जीघन विनु कीन्हीं ।
गहि नूमिमें भगीं बाँदि धन सबने लीन्हों ॥



देव सुधा मम मेज ममस तं पदं नदीप उदरगिरिणा ।
 कञ्चुके विज विवासा करे भक्तिं हृदि कुलपतिके ।
 धूम्रकान्ठे बहु वाचना, भक्ति क्वचि दुष्टे तनु कजि गयो ।
 सीब करम ज्ञानन कुचिला, प्रेत भवानक सति भयो ॥

[पद्याशेष]

समस-दृश्य

[स्थान-शामलेश्वर का बौद्धिक वन विजय घर]

[वीर्य-यात्रा से गोकर्ण लौटकर आते हैं । अपने घर को
 ऐसी दुर्दशा देखकर दुःखी होते हैं । घर को साइ-बुहार कर लीप



[गोकर्ण की देव शिल्पकारों के दर्शन]

कर गति में सोते हैं । गति में उन्हें खेड़ा दिखायी दे, कभी शयी,
 नैसा, जलती अग्नि दिखायी दे । ज्ञान मय में वही बिलीग हो

होगा वह हमने एक काना पुरुष जिसका मुख खला हुआ था।
जिसकी आँखों में लज्जा नहीं थी, कोई भाव नहीं था। उन्होंने मुझे
बुझाया कि मैं क्या करूँ। उन्होंने मुझे बुझाया कि मैं
क्या करूँ।

मोक्षार्थ—मुझे क्या करनी है ?

शिव—देखा, मैं तुम्हारा अन्तर्मुख भावें बुझाया हूँ।

मोक्षार्थ—तुम्हारा अन्तर्मुख भावें बुझाया हूँ ?

शिव—मैंने तुम्हें बुझाया है। मैंने तुम्हारे अन्तर्मुख भावों को
बुझाया है।

मोक्षार्थ—मैंने तुम्हें बुझाया है। मैंने तुम्हारे अन्तर्मुख
भावों को बुझाया है।

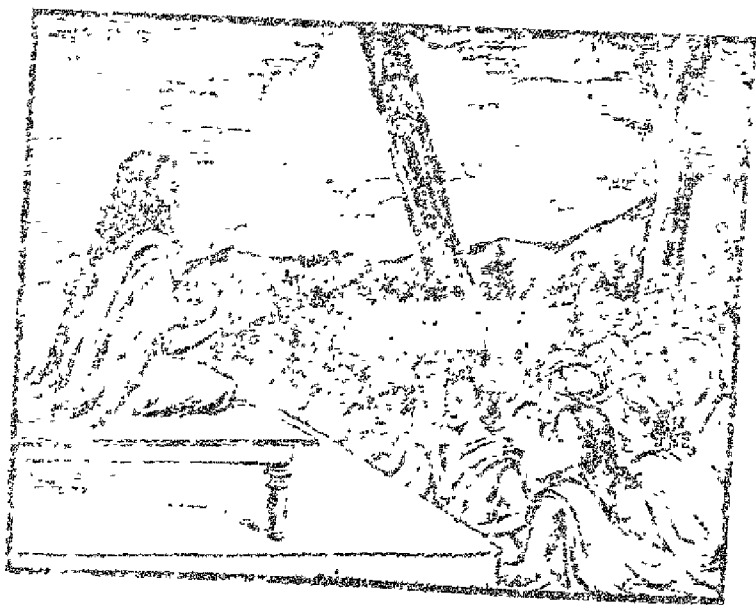
शिव—देखा, मैंने तुम्हें बुझाया है। मैंने तुम्हारे अन्तर्मुख
भावों को बुझाया है।

मोक्षार्थ—तुम्हारा अन्तर्मुख भावें बुझाया हूँ ?

[शिव का अन्तर्मुख भावें बुझाया है। दूसरे दिन मोक्षार्थ ने अपनी
नपसन्द को शिव को बताने का रोक कर उनसे अन्तर्मुख भावों के उद्धार
का उपाय पूछा :]

[सूर्य सपत्न्य से अशुभ वाणी निकली—श्रीमद्भागवत के
अध्याय में ही इसका उद्धार सम्भव है : सूर्य वाणी सभी को सुनायी
की : सभी ने साथ-साथ सपत्न्य की वैचारिका की। उन्नायन

एक बैठकर गोकर्ण समाप्त की कथा कहने लगे । प्रेत एक भाल और
एक शीश के सहित बैठकर समाप्त करने लगा । सात दिन में समाप्त
योग प्राप्त हुआ । प्रेत निरुद्ध रूप धारण करने स्वर्ग चला गया ।
नयकः उवाच आदिपर्वे बुधः ।)



‘ सुतः कथं प्रेम कथं मे केशः गोकर्णं मे कथं सुतः ॥ हा हे ।
कुछ लोगों ने कहा—कथा तो सभी ने सुनी किन्तु गोकर्णजा ने
अपने भाई को संकल्प पहुँचाया । अहं तो पदपाल
हूँ ।

—साथ, वही शब्दों की कल भावना के अनुसार
 वस्तुकारों के लक्षणों को कर कथा सुनी इतर
 सुनिके ही नहीं । आर्य पुनः भी लक्षणना से सुन
 को सुनिके ही जायगी :



[वस्तुकारों-उद्धार]

—सांस्कृतिकों ! आप दूसरा समाह सुनावें हम स
 रियां करते हैं :

वने पुनः समाह की संधारियां की शब्दों सहा
 लने विनाज जाय । साहात भगवान् ही एक
 माना वने लगे । मय विचार होकर, माने लगे ।

भागवत कथित आशुष्य गीतः । आर्या सव मिलिही की-
 द्याके सारः है बहुबन्ध, गहरे अज्ञान निनि बहु कारनि-
 कर्मन सुख करे सुधाके शिष्ट, निबन्धे दो-परी के निर जो
 वासन्ती रमना हाँके मान, करे मनमोहन भूषण अरु
 नरुप निबन्धे सब यत्न मनःधान अणुको कोनल निर को-
 यति सब अर्थानिका सारि, तुल्य बहु सुखो है साध
 रेष सब अडलिये हाँके, भाषये भक्त रहे अज्ञ
 विषये है अहं भक्तिता गुरु, विरु भक्तियोग निर सुलका
 शान सब करे सुभा निर अरु, अरुप कर सावज नहि होजे
 रीत कर लक्ष्मी सब गच्छे, सब सब सागर है साध-
 बहुबन्ध, सब सुखो यहाँ आर्या अरुबन्ध गीत

[अन्तर्गत]

